❑ इन्द्रसेन सिंह

नान्यः पन्थाविद्यतेऽयनाय

प्राचीन काल में ऋषि वाजश्रवा के पुत्र उद्दालक ने यज्ञ-फल की कामना से 'विश्वजित्' नामक यज्ञ किया। इसमें यज्ञ-कर्त्ता को अपना सब कुछ दान कर देना पड़ता है। नियमानुसार उद्दालक ने भी अपना समस्त धन दान कर दिया। ऋषि उद्दालक के नचिकेता नामक एक पुत्र था। उस समय यद्यपि नचिकेता बालक ही था, फिर भी पिता द्वारा दक्षिणा में बूढ़ी गायों को दान देते हुए देखकर उसके पवित्र हृदय में सात्विक श्रद्धा-भाव का उदय हुआ। उसने अपने मन में विचार किया कि 'जो गायें अन्तिम बार जल पी चुकी हैं, घास खा चुकी हैं, दूध दुहा चुकी हैं और जिनकी प्रजनन-शक्ति समाप्त हो चुकी है, उन गौओं को दान करने से दाता को उन्हीं लोकों की प्राप्ति होती है जो आनन्द-शून्य हैं।' अतः पितृ-भक्ति के कारण नचिकेता चुप नहीं रह सका। यज्ञ की पूर्णता न होने के कारण, पिता को मिलने वाले अनिष्ट-फल के विषय में सोचकर उसने पिता से कहा— तत् कस्मै मां दास्य सीति' अर्थात् हे तात! आप मुझे किसको देंगे। मैं भी तो आपका ही धन हूं। पहले तो पिता ने उसकी उपेक्षा करते हुए उसकी बात का कुछ भी उत्तर नहीं दिया। परन्तु जब नचिकेता ने इसी प्रश्न को दूसरी-तीसरी बार भी दुहराया तो ऋषि ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहा— 'मैं तुम्हें मृत्यु को देता हूं।'

पिता के क्रोध भरे वचन सुनकर नचिकेता सोचने लगा कि शिष्य और पुत्रों की तीन श्रेणियां होती हैं— उत्तम, मध्यम और अधम। जो शिष्य गुरु के अभिप्राय को समझ कर उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा किये बिना ही उसका पालन कर दिया करते हैं, वे उत्तम कोटि में आते हैं। जो आज्ञा पाने पर उसका पालन करते हैं, वे मध्यम कोटि के होते हैं। परन्तु जो गुरु के मन के भाव समझ लेने और आज्ञा पाने पर भी उसकी ओर ध्यान नहीं देते वे शिष्य और पुत्र अधम श्रेणी में गिने जाते हैं। मैं (नचिकेता) बहुत से पुत्रों और शिष्यों में तो प्रथम श्रेणी का हूं और बहुतों में द्वितीय श्रेणी का भी हूं। किन्तु मैं किसी भी अवस्था में अधम श्रेणी में नहीं आता, फिर न जाने क्यों पिताजी ने मुझे मृत्यु को दे दिया? भला मृत्यु-देव का मुझसे क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है? शायद किसी प्रयोजन की अपेक्षा किये बिना ही पिताजी ने क्रोधवश ही ऐसा कहा है। चाहे जो भी हो अब तो पिता जी का वचन सत्य ही करना होगा। इस प्रकार नचिकेता ने मृत्यु-देवता के यहां जाने का दृढ़ निश्चय कर लिया। उसके इस संकल्प को समझ कर ऋषि पश्चात्ताप करने लगे। पिता को इस तरह दुखी होते देख नचिकेता से नहीं रहा गया। उसने एकांत में पिता के पास जाकर कहा - 'पिताजी! आप अपने पूर्वजों के आचरण देखिये और इस समय के अन्य श्रेष्ठ पुरुषों के भी आचरण देखिये। उन लोगों के चरित्रों में न पहले कभी असत्य था, न अब है। असाधु लोग ही असत्य का आचरण करते हैं और जो लोग असत्य आचरण करते हैं, वे अजर-अमर न होकर खेती अथवा अन्न की तरह पकते (वृद्ध होकर मर जाते हैं) तथा अन्न की तरह फिर उत्पन्न हुआ करते हैं।' इस प्रकार नचिकेता ने पिता के मुख से निःसृत वचन को - भले ही वे क्रोध में ही क्यों न कहे गये हों— सत्य प्रमाणित करने का भरसक प्रयत्न किया। क्योंकि भगवान पतंजलि के अनुसार - 'जाति, देश, काल समयानवच्छिन्नाः सार्वभौम व्रतम' अर्थात् जाति, देश, काल और समय की सीमा से रहित, सभी अवस्थाओं में पालन करने योग्य यम - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य-महाव्रत कहलाते हैं। जिस समय इन पांचों यमों का अनुष्ठान सार्वभौम अर्थात् सभी के साथ, सभी स्थानों पर सभी समय समान भाव से किया जाता है तभी ये महाव्रत हो पाते हैं और तभी विविध प्रकार की सिद्धियां भी प्राप्त हो सकती हैं अन्यथा अल्पव्रत द्वारा सिद्धियों की आशा करनी व्यर्थ है। अतः इनको संकुचित नहीं करना चाहिए।

पुत्र के इस प्रकार समझाने पर पिता ने सत्य की रक्षा के लिए उसे दुखी मन यमराज के पास जाने की आज्ञा दे दी। जिस समय नचिकेता यमराज के घर पहुंचा, उस समय वे कहीं बाहर गये हुये थे। अतः तीन दिनों तक अन्न-जल ग्रहण किये बिना उसे वहीं यम की प्रतीक्षा करनी पड़ी। यमराज के लौटने पर उनकी पत्नी तथा मंत्रियों ने उनसे निवेदन किया— "साक्षात् अग्नि देव ही ब्राह्मण अतिथि के रूप में घर में प्रवेश करते हैं। साधु गृहस्थ उस अतिथि रूप अग्नि की ज्वाला की शान्ति के लिये उसे जल (पादार्घ्य) दिया करते हैं। अतएव हे वैवस्वत! आप उस ब्राह्मण-बालक के पैर धोने के लिए जल लेकर शीघ्र जाइये। अतिथि तीन दिनों से आपकी प्रतीक्षा करता हुआ अनशन किये बैठा है। अतएव जब आप स्वयं उसकी सेवा में उपस्थित होंगे तभी वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शान्त होगा। जिसके घर पर ब्राह्मण अतिथि बिना भोजन किये रहता है, उस मन्द बुद्धि की सारी आशा और प्रतीक्षायें— जिनके मिलने की उसे पूर्ण आशा रहती है और जिनके प्राप्त होने का निश्चय रहता है एवं जिनकी प्राप्ति की वह प्रतीक्षा कर रहा है— नष्ट हो जाती हैं। न तो वे पदार्थ ही उसे प्राप्त होते और जो प्राप्त भी हो जाते हैं, उनसे उसे किसी प्रकार के सुख की उपलब्धि नहीं होती। उसके यज्ञ-दान आदि इष्ट कर्म तथा कुआं, तालाब, धर्मशाला आदि बनवाने रूप पूर्त कर्म एवं उनके सम्पूर्ण फल नष्ट हो जाते हैं। इतना ही नहीं, अतिथि का असत्कार उसके पुत्र, पशु आदि धन का भी नाश कर देता है।' इस प्रकार यहां पर अतिथि को सभी प्रकार से अनुपेक्षणीय बताकर उसके महत्व का प्रतिपादन किया गया है। उनकी इन बातों को सुनकर यमराज नचिकेता के पास पहुंचे। उन्होंने अपना अपराध स्वीकार करते हुए सबसे पहले उस ब्राह्मण-पुत्र की पूजा की। इसके उपरांत उन्होंने नचिकेता से एक-एक रात्रि के लिये एक-एक करके तीन वर मांगने को कहा। पितृ-भक्त नचिकेता ने यह सोचकर कि पिता को संतुष्ट रखना ही पुत्र का सर्वप्रथम कर्त्तव्य होता है। यमराज से पहला वर यह मांगा कि उसके पिता उसके प्रति शांत संकल्प, प्रसन्न चित्त और क्रोध-रहित हो जायं। जब वह उनके (यमराज) यहां से लौटकर घर जाय तो उसके पिता उसे पहचान कर उससे पहले की तरह बातचीत करें। यमराज के 'तथास्तु' कहने तथा पूर्ण आश्वासन देने पर नचिकेता ने उनसे सभी जीवों के कल्याण हेतु स्वर्ग के साधन भूत अग्नि-तत्व को जानने की इच्छा से कहा— 'हे मृत्यो? कहते हैं स्वर्ग में न किसी प्रकार का भय है न कोई चिन्ता है। वहां तो आप भी नहीं हैं। वहां न वृद्धावस्था का डर है न भूख-प्यास की परवाह। अतएव आप उसी स्वर्ग-प्राप्ति के साधन अग्नि (यज्ञ सम्बन्धी ज्ञान) का मुझ श्रद्धालु को ज्ञान करावें। क्योंकि उसके द्वारा स्वर्ग को प्राप्त हुए पुरुष ही अमृतत्व की प्राप्ति करते हैं।' नचिकेता के दूसरे वर को सुनकर यमराज ने समस्त लोकों के आदि कारण उस अग्नि (यज्ञ) की और उसके लिये जितनी ईंटें चाहिए तथा जिस प्रकार रक्खी जानी चाहिए आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन कर दिया। यमराज ने अग्नि-तत्व का जैसा वर्णन किया था, नचिकेता ने उन्हें उसे ज्यों का त्यों सुना दिया। नचिकेता की तीक्ष्ण बुद्धि तथा उसकी प्रतिभा से प्रसन्न हो महात्मा यम ने उसे अपनी ओर से एक वर और देते हुए कहा— 'हे नचिकेता! यह अग्नि तेरे ही नाम से प्रसिद्ध होगी।' इसी के साथ उन्होंने उसे अनेक रूपों वाली एक माला भी दी। कहते हैं जो तीन बार नचिकेताग्नि का चयन करता है वह माता, पिता और आचार्य से शिक्षा प्राप्त कर जन्म और मृत्यु को पार कर लेता है। वह ब्रह्म से उत्पन्न, ज्ञानवान और स्तुति योग्य देव को जानकर तथा उसका अनुभव कर अत्यन्त शान्ति को प्राप्त हो जाता है। अत: उस अग्नि की ब्रह्म से उत्पन्न, ज्ञान-सम्पन्न पूजनीय देव के रूप में ही उपासना करनी चाहिए। इस प्रकार उस यज्ञ की विधि को जो जानता है तथा उसका सम्पादन करता है वह देह पात से पहले ही मृत्यु के बन्धन से मुक्त होकर स्वर्ग में आनन्द को प्राप्त होता है। नचिकेताग्नि को स्वर्ग का साधन बतलाकर तथा उसकी कुछ और प्रशंसा करके यमराज ने नचिकेता से तीसरा वर मांगने को कहा।

इस लोक के कल्याण के लिये पिता की प्रसन्नता का वर तथा परलोक के लिये स्वर्ग के साधन रूप अग्नि-विज्ञान का ज्ञान प्राप्त कर नचिकेता सोचता है कि उसे अब आत्मा के यथार्थ ज्ञान तथा उसकी प्राप्ति का उपाय जान लेना चाहिए। यद्यपि मृत्यु के बाद आत्मा का अस्तित्व रहता है या नहीं, इस सम्बन्ध में नचिकेता को स्वयं कोई सन्देह नहीं था, फिर भी उसने अपना मत न बतला कर प्रश्न को इस प्रकार पूछा कि इसके उत्तर में आत्मा की नित्य-सत्ता, उसके स्वरूप, गुण और परमात्मा की प्राप्ति के साधनों का विवरण अपने आप ही आ जाता है। अत: तीसरा प्रश्न आत्म-ज्ञान के विषय में है न कि आत्मा के अस्तित्व में सन्देह उत्पन्न करने वाला। तैत्तिरीय ब्राह्मण में नचिकेता का जो इतिहास मिलता है,उसमें नचिकेता ने तीसरे वर में पुनर्मृत्यु (जन्म-मृत्यु) पर विजय पाने का (मुक्ति का साधन) जानना चाहा है (तृतीय वृणीष्वेति। पुनर्मृत्योंमेऽ पचितिं ब्रूहि)। परन्तु यहां पर उसने यमराज से तीसरा वर मांगते हुए कहा— 'मृत मनुष्य के विषय में एक सन्देह है। कुछ लोग तो कहते हैं कि यह 'रहता है' और कुछ लोगों का कहना है यह 'नहीं रहता' मृत्यु के पश्चात् आत्मा का अस्तित्व रहता है अथवा नहीं रहता, इसके सम्बन्ध में हमें प्रत्यक्ष अथवा अनुमान से कोई निश्चित ज्ञान नहीं होता। आप मृत्यु के अधिपति देवता हैं। अतएव यह आत्म-तत्व मैं आप से जानना चाहता हूं। यही मेरे वरों में से बचा हुआ तीसरा वर है।'

नचिकेता के इस आत्म-तत्व संबंधी महत्वपूर्ण प्रश्न को सुनकर यमराज ने सोचा 'ऋषि कुमार बालक होने पर भी बड़ा बुद्धिमान है। इसी से यह इतने गोपनीय तत्व को जानने का आग्रह कर रहा है। परन्तु आत्म-तत्व का ज्ञान सभी को बतलाना उचित नहीं। इसे केवल अधिकारी के समक्ष ही प्रकट करना चाहिए। अधिकारी साधन-चतुष्टय से सम्पन्न होना चाहिए। इसीलिए पहले पात्र की परीक्षा की आवश्यकता है।' यही सोचकर यमराज ने आत्म-तत्व को अत्यन्त कठिन कहकर नचिकेता को टालना चाहा। उन्होंने नचिकेता से कहा कि इस विषय में पहले देवताओं को भी सन्देह हुआ था। इसे समझ सकना आसान नहीं है। यह अत्यन्त सूक्ष्म और गहन विषय है। अतएव वह इसे जानने का हठ न करे। कोई अन्य वर मांग ले। इसके लिए वह उन पर दबाव न डाले। इसे उन्हीं के लिए छोड़ दे।

विषय की सूक्ष्मता तथा गहनता का नाम सुनकर नचिकेता को तनिक भी घबड़ाहट नहीं हुई। अपने प्रश्न पर अड़े रहकर वह और भी दृढ़तापूर्वक कहने लगा कि 'निश्चय ही इस विषय में देवताओं को भी सन्देह हुआ था और आप भी इसे कठिन ही बतला रहे हैं। इसी से इस प्रश्न का महत्व और भी बढ़ जाता है। दूसरे इस महत्वपूर्ण विषय को समझाने वाला आप जैसा अनुभवी वक्ता भी नहीं मिल सकता। आप इसे छोड़कर दूसरा वर मांगने को कहते हैं, परन्तु मैं तो समझता हूं कि इसकी तुलना में अन्य कोई वर ही नहीं है, क्योंकि और सभी वर अनित्य फल वाले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। केवल यही कल्याण-प्राप्ति का एक मात्र हेतु है। अत: आप इसी का उपदेश दें।

जब किसी विषय को नहीं बतलाना होता तो सबसे पहले उसकी कठिनता का भय दिखलाया जाता है। परीक्षा के लिए यमराज ने भी यही किया, किन्तु इस परीक्षा में नचिकेता उत्तीर्ण हो गया। अत: अबकी बार उन्होंने उसकी और भी कठिन परीक्षा लेनी चाही। साधक अथवा जिज्ञासु की परीक्षा के लिए दो ही शस्त्र होते हैं— एक भय और दूसरा लोभ। नचिकेता भय से तनिक भी विचलित नहीं हुआ। इसलिए यमराज ने उसके ऊपर दूसरा शस्त्र लोभ का प्रयोग करते हुए उसे सौ-सौ वर्ष जीने वाले पुत्र-पौत्र, गौ आदि बहुत से पशु, हाथी, घोड़े, स्वर्ण और भूमण्डल का विशाल साम्राज्य तथा इन्हें भोगने के लिए जितने वर्ष जीने की इच्छा हो उतने वर्षों की आयु मांग लेने को कहा अथवा जो-जो भोग मृत्यु लोक में दुर्लभ है उन्हें तथा उन सुन्दरियों को भी मांग लेने को कहा जो मृत्यु लोक में नहीं प्राप्त हो सकतीं। परन्तु नचिकेता के ऊपर यमराज के इन प्रलोभनों का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि वह विचार और वैराग्य की उस उच्च स्थिति पर पहुंच चुका था जहां पहुंच जाने पर साधक को किसी प्रकार का प्रलोभन डिगा नहीं पाता। इसी से उसने यमराज से कहा— 'हे मृत्यो! आपने जिन भोग्य पदार्थों का वर्णन किया है वे कल तक रहेंगे अथवा नहीं, इसमें भी सन्देह है। ये अप्सरा आदि भोग तो मनुष्य की सम्पूर्ण इन्द्रियों के तेज को ही क्षीण कर देते हैं। अत: धर्म, वीर्य, प्रज्ञा, तेज और यश आदि का क्षय करने वाले होने से ये अनर्थ के ही कारण हैं। यह दीर्घ जीवन भी अनन्त काल की तुलना में बहुत ही कम है। जब ब्रह्मा का जीवन भी अल्पकालिक है, तब औरों की बात ही क्या?' 'इस धन से मनुष्य की तृप्ति नहीं होती, क्योंकि जहां केवल कामनाओं का ही विस्तार है वहां तृप्ति कैसी? और जब मैं आप को देख ही चुका हूं तो जब मुझे धन की लालसा होगी तब उसे प्राप्त ही कर लूंगा। इसी प्रकार जब तक आप शासन करते रहेंगे तब तक तो मैं जीवित भी रह सकता हूं। अतएव 'वरस्तु मे वरणीय: स एव'— मैं तो वही आत्मतत्व वाले प्रश्न को ही जानना चाहूंगा। भला अजर और अमर देवताओं के समीप पहुंच कर जरा और मृत्यु से ग्रस्त कौन ऐसा मनुष्य होगा, जो अस्थिर और परिणाम में दुखदायी विषयों की इच्छा करेगा। अत: इस आत्म-तत्व सम्बन्धी वर के गूढ़ होने पर भी नचिकेता दूसरा अनित्य वर प्राप्त करने की इच्छा नहीं रखता।

यमराज ने नचिकेता की भलीभांति परीक्षा लेकर जब यह समझ लिया कि वह परम वैराग्यवान निर्भीक तथा उत्तम अधिकारी है तब उन्होंने ब्रह्म-विद्या को प्रारंभ करने से पहले उसके महत्व पर प्रकाश डालते हुए 'श्रेय और प्रेय' के सम्बन्ध में समझाया। श्रेय मनुष्य के वास्तविक कल्याण मोक्ष को कहते हैं और प्रेय स्त्री-पुत्र, धन-मानादि प्रिय लगने वाले पदार्थों का नाम है। ये दोनों मनुष्य के समक्ष अपने-अपने प्रयोजनों के साथ उपस्थित हो, उसे बांधने का प्रयास करते हैं। इन दोनों में से जो श्रेय को ग्रहण करता है, उसका तो कल्याण (मोक्ष) होता है और जो प्रेय को ग्रहण करता है, वह सांसारिक भोगों तथा धन-मानादि में फंसकर अपने पुरुषार्थ से भ्रष्ट हो जाता है। इनमें से मनुष्य किसी को भी ग्रहण कर सकता है। बुद्धिमान पुरुष तो श्रेय और प्रेय दोनों के गुण-दोष को भली प्रकार समझ कर श्रेय का ग्रहण और प्रेय का त्याग कर देते हैं, किन्तु मूढ़ लोग योग-क्षेम (प्राप्त स्त्री-पुत्र, धन आदि की रक्षा और अप्राप्त भोग्य-पदार्थों की प्राप्ति) के लिये प्रेय को ही ग्रहण करते हैं। परन्तु यमराज के द्वारा बार-बार प्रलोभन दिये जाने पर भी नचिकेता ने प्रिय लगने वाले सांसारिक विषयों को हेय समझ कर त्याग दिया। इससे वह उस निकृष्ट गति को नहीं प्राप्त हुआ, जिसमें प्राय: बहुत से 'विद्या' का अधिकारी समझ कर उसकी प्रशंसा की, क्योंकि उसे बहुत से भोग भी नहीं लुभा सके। अविद्या में पड़े हए भी जो लोग अपने को बहुत बड़ा पण्डित मानते हैं, वे भोगी मूढ़ जन अंधे से चलाये हुए अन्धों की तरह चारों ओर ठोकरें खाते हुए भटकते फिरते हैं। यमराज आगे कहते हैं—

न साम्पराय: प्रति भाति बालं, प्रमाद्यन्तं वित्त मोहेन मूढ़:।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी, पुन: पुनर्वशमापद्यते मे।।

'धन के मोह से मोहित, प्रमाद में रत रहने वाले मूर्ख को परलोक या कल्याण का मार्ग दिखाई ही नहीं देता। वह तो केवल यही मानता है कि स्त्री-पुत्रादि से भरा हुआ एक मात्र यह लोक ही सत्य है। इसके अलावा कोई परलोक है ही नहीं। ऐसा मानने वाला पुरुष बारम्बार जन्म लेकर मृत्यु को प्राप्त होता रहता है।'

परन्तु यह आत्म-ज्ञान कोई साधारण-सी बात न होकर अत्यन्त दुर्लभ वस्तु है—

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्य:, शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्यु:
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा, आश्चर्योज्ञाता कुशलानुशिष्ट:।।

'जगत में अधिकांश मनुष्यों को इस आत्म-तत्व की चर्चा भी सुनने को प्राप्त नहीं होती। बहुत से लोग इसे सुनकर भी समझ नहीं पाते। इस गूढ़ आत्म-तत्व का वर्णन करने वाला महापुरुष आश्चर्यमय अर्थात् दुर्लभ होता है। इस आत्मा को प्राप्त (जानने वाला) करने वाला भी कहीं कोई एक निपुण पुरुष ही होता है। इसी प्रकार किसी आत्मदर्शी आचार्य द्वारा उपदेश पाकर उसके अनुसार मनन-निदिध्यासन करते-करते तत्व का साक्षात्कार करने वाले पुरुष भी आश्चर्यजनक ही होते हैं।

'यह आत्म-तत्व अल्पज्ञ मनुष्य द्वारा समझाये जाने पर तनिक भी समझ में नहीं आता, क्योंकि यह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म होने के कारण सर्वथा अतर्क्य है। इसी से सामान्य व्यक्ति के समझाये जाने पर, यदि कोई उसका विविध प्रकार से चिन्तन और मनन भी करता है तब भी वह समझ में नहीं आता। अत: जब तक इसे यथार्थ रूप से समझाने वाला कोई आत्म-दर्शी महापुरुष नहीं प्राप्त होते, तब तक मनुष्य का इसमें प्रवेश पाना अत्यन्त कठिन होता है। इसे तर्क से भी प्राप्त नहीं किया जा सकता।' नचिकेता की प्रशंसा करते हुए यमराज कहते हैं कि उन्हें उसकी अनन्य निष्ठा को देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है, क्योंकि यह निष्ठा तर्क से कभी नहीं मिल सकती। यह तो भगवत्कृपा के फलस्वरूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी महापुरुष के संग से ही उपलब्ध होती है। उस महापुरुष द्वारा आत्म-तत्व के विवेचन को श्रवण करते हुए, उसी का चिन्तन करने का अभ्यास करते रहना चाहिए। इसके उपरांत यमराज ने अपना उदाहरण देते हुए बतलाया कि उन्होंने यह जानते हुए भी नचिकेताग्नि का चयन किया कि अनित्य साधनों द्वारा नित्य पदार्थ की प्राप्ति नहीं की जा सकती, किन्तु उन्होंने नचिकेताग्नि आदिरूप से जो कुछ यज्ञ आदि कर्म किये, सबके सब कामनाओं और आसक्ति-भाव से रहित होकर केवल लोक-कल्याण के लिए कर्त्तव्य-बुद्धि से प्रेरित होकर किए। इस निष्काम भाव की ही यह महिमा है कि अनित्य पदार्थों के द्वारा कर्त्तव्य-पालन रूप ईश्वर-पूजा करके मैंने नित्य-सुख रूप परमात्मा की प्राप्ति कर ली। तदुपरांत उन्होंने नचिकेता की बुद्धि, उसके त्याग तथा निष्काम भाव की प्रशंसा करके उसे आत्म-तत्व का अधिकारी बताया। आगे उन्होंने उसके हृदय में ईश्वर प्राप्ति की तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न करने हेतु परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हुए कहा—

तं दुर्दशं गूढ़म अनुप्रविष्टं, गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्म योगाधिगमेन देवं, मत्वा धीरो हर्ष-शोको जहाति।।

'उस कठिनता से दिखाई देने वाले, गूढ़ स्थान में अनुप्रविष्ट (विषय-विकार रूप विज्ञान से छिपे हुए), बुद्धि में स्थित, गहन स्थान में रहने वाले पुरातन देव को अध्यात्म योग (चित्त को विषयों से हटाकर आत्मा में लगा देना) की प्राप्ति द्वारा जान कर धीर (बुद्धिमान) पुरुष हर्ष और शोक का परित्याग कर देता है।'

'इस आत्म-तत्व विषयक उपदेश को अनुभवी महापुरुष (सत्गुरु) द्वारा श्रद्धा-पूर्वक सुनना चाहिये, सुनकर उसका मनन करना चाहिये। उसके बाद एकान्त में उस पर विचार करते हुये, उसे बुद्धि में धारण करना चाहिये। इस प्रकार निरन्तर साधन-रत रहने पर जब साधक को आत्म-तत्व की प्राप्ति हो जाती है, तब वह आनन्द-रूप ही हो जाता है। नचिकेता के लिये भी वह मोक्ष का द्वारा खुला हुआ है।'

यमराज के मुख से परब्रह्म परमात्मा की महिमा सुनकर और अपने को आत्म-ज्ञान का अधिकारी समझकर नचिकेता ने कहा— 'भगवन! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो धर्म और अधर्म से परे, कार्य और कारण रूप प्रपञ्च से पृथक् और भूत तथा भविष्य से भिन्न जिन सभी प्रकार के व्यावहारिक विषयों से अतीत परमात्मा को आप देखते हैं, उसे बतलाइये।'

नचिकेता के प्रश्न को सुनकर यमराज ने आत्मा के स्वरूप तथा उसके लक्षणों को बतलाने से पूर्व उसके साक्षात् साधन प्रणव का उपदेश प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा—

'सभी वेद जिसका प्रतिपादन करते हैं, जिसको प्राप्त करने हेतु सभी प्रकार के तप किये जाते हैं तथा जिसके साक्षात्कार के लिये ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है। संक्षेप में उस पद को 'ॐ' कहते हैं।' अत: 'यह अक्षर ही अपर ब्रह्म है और यही पर ब्रह्म है। यही सभी नामों में व्याप्त है। परमात्मा के समस्त नामों में 'ॐ' ही सर्वश्रेष्ठ है। यही ब्रह्म का प्रतीक है। इसको 'यही उपास्य ब्रह्म है' ऐसा जानकर जो पर अथवा अपर जिस ब्रह्म को प्राप्त करने की इच्छा करता है, उसे वही प्राप्त हो जाता है। यही ॐकार रूप आलम्बन (सहारा, साधन)— गायत्री आदि— सभी आलम्बनों में श्रेष्ठ है यानी सबसे अधिक प्रशंसनीय है। जो साधक इसे जान जाता है, वह परब्रह्म में स्थित होकर महिमान्वित होता है।'

नोट : यद्यपि प्रणव-उपासना कई प्रकार से की जाती है, किन्तु इनमें एक अत्यन्त सरल विधि है, जिसका अवलम्बन कोई भी मनुष्य ग्रहण कर सकता है। प्राण देने वाली वस्तु अथवा जीवन-दाता पदार्थ को प्रणव कहते हैं। शरीर में इसका अनुभव ध्वनि के रूप में होता है। इसी ध्वनि को अनाहत भी कहते हैं। इसकी उत्पत्ति हृदय के समीप अनाहत चक्र से होती है। अत: एकान्त में किसी आसन पर सीधे बैठकर, बिना हिले-डुले साधना शुरू करनी चाहिये। साधना-स्थल एकान्त में तो होना ही चाहिये, वहां कोई बाहरी आवाज नहीं सुनाई पड़नी चाहिये। दिन में ऐसी सुविधा यदि न मिले तो रात में सबके सो जाने पर अभ्यास करना चाहिये। यह आवश्यक नहीं है कि भूमि या चौकी पर ही बैठकर साधन किया जाय। इसे चारपाई पर बैठकर भी किया जा सकता है। शरीर और वस्त्र शुद्ध होने चाहिये। कानों में अंगुली डालने की भी जरूरत नहीं है। गहरा ध्यान लगाने से ही काम चल जाता है। वृत्ति को अन्तर्मुखी करके, सभी ओर से चित्त को हटाकर हृदय-स्थल पर होने वाली धड़कन की ध्वनि (अथवा धक्के के स्वर) को सुनने की कोशिश करनी चाहिये। पूरे ध्यान (एकाग्रता) केसाथ इस प्रकार सुनना चाहिये जैसे कोई दूर की ध्वनि सुनता है। मन में कोई अन्य विचार नहीं आना चाहिए। केवल उसी को सुनने की धुन सवार हो। यदि शुरू में ध्वनि सुनाई न दे तो दो-तीन बार लम्बा श्वांस खींच लेना चाहिये। प्राणायाम करने वालों को यह ध्वनि अत्यन्त स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ती है। श्वांस खींचने से धड़कन तेज हो जाती है और स्पष्ट सुनाई देने लगती है। कभी कभी श्वांस खींचने पर भी वह ध्यान में नहीं आती। उस समय घबड़ाना नहीं चाहिये। लगातार प्रयत्न करते रहना चाहिये। कुछ ही दिनों में ध्वनि स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ने लगेगी। यहां तक कि सोते-जगते, चलते-फिरते तथा काम-काज करते हुए भी उसका अनुभव होगा।

यद्यपि यह एक प्रकार की ध्वनि ही होगी, किन्तु थोड़ा ध्यान देने पर पता चलेगा कि इससे 'ओऽम' शब्द ध्वनित हो रहा है और कण्ठ को वेधता हुआ मस्तिष्क में जा पहुंचा है। उस समय आज्ञा चक्र एवं सहस्रार के प्रत्येक दल से इसकी गुंजार आ रही है। पुन: नीचे उतर कर नाभि चक्र और दूसरे स्थूल चक्रों में भी सुनाई देगी। इस साधन को करते हुए साधकों को अनेक प्रकार के प्रकाश भी दृष्टिगोचर होते हैं। ये प्रकाश विभिन्न चक्रों तथा तत्वों के होते हैं। परन्तु किसी-किसी को नहीं दिखाई पड़ते। यह संस्कार की बात है।

जिस समय शब्द के साथ तन्मयता हो जाय, लक्ष्य के अतिरिक्त अपना अथवा अन्य किसी वस्तु का ध्यान न आवे, प्रेम में विभोर होने पर जब रोम-रोम से अमृत झरने लगे, शरीर पुलकायमान और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गद्‌गद् होने लगे, आनन्द का सागर अपने अन्त:करण में उमड़ता हुआ जान पड़े, मन इस मुग्धावस्था से हटना ही न चाहे, तब समझ लेना चाहिए कि क्रिया पूरी हो गयी और साधना में सिद्धि मिल गयी। उस समय साधक समस्त आवरणों को पारकर, महाकारण जगत् आनन्दमय कोश में प्रवेश कर जाता है। आगे गुरु-कृपा से आनन्द और अहम् का झीना पर्दा हट जाता है। और साधक वास्तविक भण्डार में भी एक दिन पहुंच जाता है। यही प्रणव उपासना अथवा लय योग-साधना कहलाती है।'' इस साधना की एक विधि महात्मा चरण दास जी ने अपने ''तत्व-योगोपनिषद'' में भी बतलायी है। उपर्युक्त विधि एक अनुभवी महात्मा के ग्रन्थ से उद्धृत है।

इसके अलावा प्रणव के अर्थ का चिन्तन करते हुए उसके जप को भी प्रणव-उपासना कहते हैं। इस प्रणव को किसी न किसी रूप में संसार में प्रचलित प्राय: सभी प्रमुख धर्मों ने अपनाया है। महर्षि पतंजलि ने इस प्रणव को ईश्वर का वाचक कहा है— तस्य वाचक: प्रणव:। श्री मद्भगवद्गीता में भी ओउम् को ब्रह्म कहा गया है— 'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म।' मुण्डकोपनिषद में प्रणव को धनुष, आत्मा को बाण और ब्रह्म को लक्ष्य बतलाकर अगले श्लोक में 'ओमित्येवंध्यायथ आत्मानं' कहकर सर्वात्मा पुरुषोत्तम का 'ओउम्' इस नाम से जप करने को कहा गया है। माण्डूक्योपनिषद में तो केवल प्रणव के ही महत्व का प्रतिपादन करते हुए उसे ही भूत, भवत् और भविष्यत् कहकर त्रिकालातीत भी कहा गया है। वहां प्रणवो-पासना की दो विधियां बतलाई गई हैं।

प्रणवोपासना रूपी साधन बतलाकर यमराज ने आत्मा के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए आगे कहा—

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।

'यह आत्मा न जन्मता है, न मरता है, न यह किसी दूसरे से उत्पन्न हुआ है, न कोई दूसरा ही इससे उत्पन्न हुआ है। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और सनातन है। शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मरता।' मरना और मारना सब शरीर के साथ होता है, आत्मा न कभी मरता है और न उसे कोई मार ही सकता है। जिस प्रकार मकान के गिर जाने से उसमें स्थित आकाश का नाश नहीं होता, इसी प्रकार देहादि के नाश से आत्मा का नाश नहीं होता। केवल अज्ञानी ही इसे मरने और मारने वाला समझता है। क्योंकि यह आत्मा 'सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से भी महत्तर है। यह जीव की बुद्धि रूपी गुफा में छिपा हुआ है।' इसे वही देख पाता है जो सभी प्रकार के भोगों की कामनाओं से रहित हो चुका है। जो कर्मों की सिद्धि और असिद्धि में सुख और दुख का अनुभव नहीं करता वह सभी प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त रहता है। जो सदैव परमात्मा की अनन्त सत्ता का अनुभव करता हुआ शान्त और स्थिर रहता है। परन्तु जो इस प्रकार का नहीं है, उसे आत्मा के दर्शन नहीं होते। क्योंकि यह आत्मा परस्पर विराधी धर्मों वाला है। यह एक स्थान पर स्थित हुआ भी दूर चला जाता है तथा शयन करते हुए भी सब ओर पहुंच जाता है। इसे सूक्ष्मबुद्धि वाले विद्वान ही समझ सकने में समर्थ हो पाते हैं। यद्यपि इस आत्मा को जानना अत्यन्त कठिन है, फिर भी उपाय करने से इसे जाना जा सकता है। यमराज कहते हैं कि इसे उनके सिवाय अन्य कौन जान सकता है।

यह एक ही आत्मा सभी ओर से सब में व्यापक होने पर भी—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्त स्यैष आत्मा विवृणुते तनूस्वाम्।।

'यह आत्मा न तो वेदों के प्रवचन से प्राप्त होता है, न तो बुद्धि की धारणा शक्ति से और न तो जन्म भर शास्त्रों के श्रवण मात्र से ही मिलता है। यह साधक जिस आत्मा का वरण— प्रार्थना करता है, उस वरण करने वाले आत्मा से ही यह प्राप्त किया जाता है। 'केवल आत्म-लाभ के लिए ही प्रार्थना करने वाले निष्काम पुरुष को आत्मा के द्वारा ही आत्म-दर्शन होता है। अर्थात् ऐसे साधक के प्रति आत्मा अपने स्वरूप को प्रकाशित कर देता है 'अर्थात् हम ही आत्मा हैं और हम स्वयं को ही वरण करते हैं।' परन्तु इसके लिये कुछ आवश्यक शर्तें हैं, जिनकी ओर संकेत करते हुए यमराज कहते हैं—

ना विरतो दुश्चरितान्ना शान्तो ना समाहित:।
ना शान्त मानसो वापि प्रज्ञानैनमाप्नुयात्।।

'जो दुश्चरित- पाप कर्मों से निवृत्त नहीं हुआ है, जिसकी इन्द्रियां शान्त नहीं हैं और जिसका चित्त एकाग्र अथवा शान्त नहीं है वह इसे सूक्ष्म बुद्धि द्वारा विचार करने पर भी प्राप्त नहीं कर पाता। अर्थात् जो शम-दम तथा चित्त की वृत्तियों के निरोध रूप समाधि से रहित है, जिसका मन अशान्त है, उसको केवल पाण्डित्य और तर्कों की तीक्ष्णता से ही आत्म-दर्शन नहीं हो सकता। जो शम दम आदि गुणों से युक्त है, जो शुद्ध, संयत और समाहित चित्त है, जो इन्द्रिय-लालसाओं से विरत है और जिसने श्रवण, मनन और निदिध्यासन (ध्यान) द्वारा अभेद रूप ज्ञान प्राप्त कर लिया है, वही प्रज्ञान द्वारा इस आत्मा को प्राप्त कर सकता है। परन्तु जो साधक ऐसा नहीं है, वह चाहे ब्राह्मण हो चाहे क्षत्रिय, उसे परमात्मा का 'अन्न' (ग्रास) बन जाना पड़ता है। सबका संहार करने वाला मृत्यु देवता भी परमात्मा के भोजन का साग-पात बन जाता है। अत: ऐसे परमात्मा को साधन-विहीन मनुष्य कैसे जान सकता है।

इसके पश्चात् यमराज ने जीवात्मा और परमात्मा के नित्य सम्बन्ध तथा निवास-स्थान का परिचय देते हुए बतलाया है कि शुभ-कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त मनुष्य-शरीर को बुद्धि रूपी गुफा में सत्य का पान करने वाले जीवात्मा और परमात्मा छाया और धूप की भांति एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी अवस्थित हैं। परन्तु दोनों के भोग में बहुत बड़ा अन्तर होता है। परमात्मा शुभ कर्मों के फल को भोगते हुए भी नहीं भोगते। वे केवल उन भोगों को भुगताते हैं, किन्तु जीवात्मा उन कर्मों के भोगों को भोगता हुआ सुख और दुख का अनुभव करता है। जिस प्रकार धूप के बिना छाया का अस्तित्व नहीं रहता उसी प्रकार परमात्मा के कारण ही जीवात्मा में अल्प ज्ञान का प्रकाश रहता है। अत: मनुष्य को निरंतर परमात्मा का चिन्तन करते हुए उसी को प्राप्त करने का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रकार साधक यज्ञादि शुभकर्मों द्वारा अपर ब्रह्म को तथा ज्ञान द्वारा परब्रह्म को जानने में समर्थ होता है। जीव की मुक्ति के लिए जितने पथ हैं, उनमें ज्ञान ही सर्व प्रधान है।

जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूप का निर्णय करके यमराज ने परमात्मा की प्राप्ति के साधनों को बतलाने के लिए आत्मा का रथी और शरीर का रथ के रूप में चित्रण करते हुए कहा—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रह मेव च॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयास्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रिय मनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥

'शरीर रथ है, आत्मा रथ का स्वामी रथी है, बुद्धि सारथी है और मन लगाम है, इन्द्रियां घोड़े हैं, शब्द-स्पर्शादि विषय ही इनके दौड़ने के मार्ग हैं और शरीर, इन्द्रिय तथा मन से युक्त जीवात्मा को भोक्ता कहते हैं।'

'घोड़ों से ही रथ चलता है। हाथों में लगाम पकड़े हुए बुद्धिमान सारथी ही रथ को जिधर चाहता है ले जाता है। इन्द्रिय रूपी बलवान और प्रमथनकारी घोड़े विषयरूपी मार्ग पर मनमाना दौड़ना चाहते हैं। यदि बुद्धि रूपी सारथी सावधान होकर मनरूपी लगाम को पकड़े हुए है तो घोड़ों की ताकत नहीं कि वे इधर-उधर जा सकें। परन्तु इसके विपरीत यदि बुद्धि रूपी सारथी विवेक पूर्ण स्वामी का आज्ञाकारी, लक्ष्य पर हमेशा स्थिर रहने वाला, शक्तिशाली और इन्द्रिय रूपी अश्वों की संचालन-क्रिया में कुशल नहीं होता तो इन्द्रिय रूपी दुष्ट घोड़े उसके वश में न रहकर लगाम को अपने वश में कर लेते हैं। परिणाम स्वरूप रथ और रथी को किसी भी बुरे स्थान में पटक देते हैं। अतः जिसकी बुद्धि में विवेक है, जिसका मन एकाग्र और समाहित है, उसकी इन्द्रियां अच्छे घोड़ों की तरह बुद्धि रूप सारथी के वश में रहती हैं। ऐसा साधक जो विवेकवान होता है, जिसका मन निगृहीत है, जो सदा पवित्र रहता है वह ऐसे परम पद को प्राप्त होता है, जहां से उसे लौटकर पुनः जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता। वह अपने इसी रथ की सहायता से संसार-सागर के उस पार पहुंच कर सर्वव्यापी परब्रह्म परमेश्वर के उस सुप्रसिद्ध परम पद को प्राप्त हो जाता है, जिसे— 'तद् विष्णोः परं पदम्'— विष्णु का परम पद कहा जाता है।' इस परम पद की प्राप्ति के लिए किस प्रकार स्थूल इन्द्रियों से शुरू करके सूक्ष्मता के तारतम्य-क्रम से प्रत्यगात्म-स्वरूप से ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, उसके विषय में बतलाते हुए यमराज कहते हैं—

'इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः॥
महतः परम व्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः।
पुरुषान्न परम किंचित्सा काष्ठा सा परागतिः॥

'इन्द्रियों से उनके विषय श्रेष्ठ हैं, विषयों से मन श्रेष्ठ है, मन से बुद्धि श्रेष्ठ है और बुद्धि से भी महान् आत्मा उत्कृष्ट है। महतत्व से अव्यक्त (मूल प्रकृति) श्रेष्ठ है और अव्यक्त से भी पुरुष श्रेष्ठ है। पुरुष से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है। वही (सूक्ष्मत्व) की पराकाष्ठा (सीमा) है, और वही सर्वोत्कृष्ट गति है। इस प्रकार इन पर विचार करते हुए इस आत्मा को सूक्ष्म-बुद्धि द्वारा ही ग्रहण करने का निरन्तर अभ्यास करते रहना चाहिये। इसके उपरान्त उन्होंने कहा कि यद्यपि परमात्मा सभी प्राणियों के हृदयों में विराजमान हैं, किन्तु माया के अथवा अज्ञान के पर्दे में छिपे रहने के कारण सबको प्रत्यक्ष नहीं होता। उसे प्रत्यक्ष करने अथवा उसके दर्शन प्राप्त करने के लिए विवेकशील पुरुष जो साधन अपनाते हैं, उसी ध्यान अथवा लय-प्रणाली पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेतद्यच्छान्त आत्मनि॥

'विवेकी पुरुष वाक्-इन्द्रिय को मन में, मन को ज्ञान अर्थात् प्रकाश स्वरूप बुद्धि में, ज्ञान-स्वरूप बुद्धि को महतत्व में और महतत्व को शान्त आत्मा में नियुक्त करें।' ध्यान तथा समाधि का यही अभ्यास क्रम है। संकल्प वाणी के रूप में ही प्रकट होता है। इसी कारण वाक्य (वाणी) का मूल है प्राण शक्ति। उस प्राण-शक्ति को प्राणायाम के द्वारा स्थिर कर सकने से मन के नाना प्रकार के संकल्प मन में ही विलीन हो जाते हैं। संकल्प-विकल्प-रहित हो जाने पर मन एकाग्र हो जाता है। यही है मन को ज्ञानात्मा में ले जाना। धैर्यपूर्वक साधनाभ्यास करते रहने से प्राण स्पन्दन-रहित हो जाता है। इससे चित्त में भी स्पन्दन नहीं रह जाता। किन्तु वासना का बीज तब भी सुप्तावस्था में रह जाता है, पर सिर नहीं उठा पाता। इसी को महत् आत्मा अर्थात् बुद्धि का अतिसूक्ष्म भाव कहते हैं। बुद्धि की इसी सूक्ष्मावस्था में आत्मा का स्पर्श अनुभूत होता है। उस समय भी सविकल्प का भाव रहता है। पश्चात् उस स्पर्श का जब पुनः विराम नहीं रहता तब संस्कार के बीज का भी नाश हो जाता है, वही शान्त आत्मा या निर्विकल्प समाधि की स्थिति है।' (भूपेन्द्र नाथ सान्याल कृत भगवद्गीता - भाष्य से उद्धृत)।

इस पद्धति-विशेष से आत्म-ज्ञान की उपलब्धि कर पुरुष स्वस्थ, प्रशान्त चित्त एवं कृत-कृत्य हो जाता है। इसीलिए उस आत्मा के साक्षात्कार हेतु उद्बुद्ध करते हुये यमराज कहते हैं—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

'उठो, जगो और महापुरुषों के पास जाकर इसे जानो। क्योंकि बुद्धिमान लोग इस मार्ग को— क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति॥' तलवार की धार पर चलने के समान बतलाते हैं।

पहले यह कहा जा चुका है कि सम्पूर्ण प्राणियों की बुद्धि रूपी गुहा में अवस्थित यह आत्मा अत्यन्त कठिनता से दिखलाई पड़ता है। प्रश्न उठता है कि ऐसा क्यों होता है? इसका उत्तर देते हुए यमराज कहते हैं—

पराञ्चिरवानि व्यतृणंत्स्वयं भू स्वस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्ष दावृत्त चक्षुर मृतत्व मिच्छन॥

'इन्द्रियों के मुख बाहर की ओर हैं, इसी से वे केवल बाहर की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्तुओं को देखती हैं अन्तरात्मा को नहीं देखती। कोई विवेक सम्पन्न पुरुष ही अमृतत्व की शुभ इच्छा से इन इन्द्रियों को अन्तर्मुखी करके आत्मा को देख पाता है। अल्पज्ञ पुरुष बाहरी भोगों के ही पीछे लगे रहते हैं। इसी से वे मृत्यु के सर्वत्र फैले हुए पाश में पड़ते हैं, किन्तु ज्ञानी पुरुष अमरत्व को समझ कर संसार के क्षणिक पदार्थों में नहीं फंसते।' अत: जिस आत्मा के द्वारा मनुष्य रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श और सांसारिक सुखों को जानने में समर्थ होता है, जिस आत्मा से इस लोक की कोई भी वस्तु अविज्ञेय नहीं है, वह आत्मा सर्वज्ञ है। उसी के विषय में नचिकेता ने पूछा था।

जो यहां कार्य रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है, वही कारण रूप में भी है। परन्तु जो उपाधि के सम्बन्ध से, भेद ज्ञान के कारण तथा अविद्या के प्रभाव से उस अभिन्न स्वरूप ब्रह्म को नाना रूपों में देखता है— वह बारम्बार मृत्यु को (जन्म-मरण को) ही प्राप्त होता है। इस ज्ञान की प्राप्ति केवल विचार से ही होती है। यहां तनिक भी भेद नहीं है। जो यहां भेद देखता है, वही मृत्यु की शरण में जाता है। जैसे शुद्ध जल शुद्ध जल में मिल कर एक रस हो जाता है उसी प्रकार आत्म-दर्शी पुरुष का आत्मा भी परमात्मा से मिलकर एक हो जाता है।

आगे चलकर यमराज ने फिर कहा— 'हे नचिकेता! मैं प्रसन्न होकर तुम्हें यह अत्यन्त गोपनीय सनातन ब्रह्म के विषय में बतला रहा हूं। ब्रह्म को न जानने से मृत्यु के बाद जीव की क्या गति होती है, सुनो! जिसके जैसे कर्म, ज्ञान तथा वासना होती है, उसी के अनुसार किसी को तो माता के गर्भ में जाना पड़ता है और किसी को वृक्ष, पाषाण आदि स्थावर योनियां प्राप्त होती हैं। जब समस्त प्राणी निद्रा-ग्रस्त रहते हैं, उस समय जो एक निर्गुण ज्योतिर्मय पुरुष अपने इच्छित पदार्थों की रचना करते हुए जागता रहता है, वही शुद्ध है, वही ब्रह्म है और वही अमृत कहा जाता है। उसका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। सभी लोक उसी में अवस्थित हैं।

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥
वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥

'अग्नि और वायु जैसे एक ही एक होते हैं, फिर भी अग्नि प्रकाश स्वरूप होकर तथा वायु प्राण रूप होकर जब भुवन में प्रवेश करते हैं तब वे ही भिन्न-भिन्न वस्तुओं में भिन्न-भिन्न रूप में दिखाई देते हैं, इसी प्रकार सभी प्राणियों में रहने वाला आत्मा एक ही है, परन्तु सब में भिन्न-भिन्न रूप में दीखता है। आकाश की तह निर्विकार होने के कारण बाहर भी वही रहता है।

सूर्यो यथा सर्व लोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्य दोषैः।
एकस्तथा सर्व भूतान्तरात्मा न लिप्यते लोक दुःखेन वाह्यः॥

'जिस प्रकार एक ही सूर्य समस्त लोकों की आंख होकर सभी अच्छी-बुरी वस्तुओं को देखता है, परन्तु उनके संसर्ग से होने वाले बाहरी दोषों से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार सभी प्राणियों का एक ही अन्तरात्मा भी लोक के दुख से लिप्त नहीं होता, उससे बाहर ही रहता है।'

समस्त प्राणियों के भीतर शक्ति रूप से अवस्थित आत्मा एक है। वही सबको अपने अधीन रखता है। वह एक ही अनेक रूपों में दिखाई देता है। जो नित्यों का नित्य एवं चेतन का भी चेतन है। जो एक हो सबकी इच्छाओं को पूर्ण करता है, उस शरीरस्थ आत्मा को जो धीर पुरुष जानते हैं, उन्हें ही नित्य सुख और शान्ति प्राप्ति होती है, दूसरों को नहीं। जिसको सूर्य प्रकाशित नहीं कर सकता, जो चन्द्रमा और तारा-गणों से प्रकाशित नहीं होता, बिजली भी जिसे प्रकाशित नहीं कर सकती, भला उसे बेचारा अग्नि कैसे प्रकाशित कर सकता है? जिसके प्रकाश से ही सब प्रकाशित होते हैं, उसी के प्रकाश से ही यह सब सूर्य आदि प्रकाशित हो रहे हैं। यह समस्त जगत् प्राण-ब्रह्म से उत्पन्न होकर उसी से नियम पूर्वक चेष्टा कर रहा है। यह महान् भय रूप है तथा उठाए हुए वज्र के समान है। जैसे अपने सामने स्वामी को हाथ में वज्र उठाये देखकर सेवक नियमानुसार उसकी आज्ञा के पालन करने में तत्पर रहते हैं, उसी प्रकार सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारा आदि रूप यह सारा जगत् अपने अधिष्ठाताओं सहित एक क्षण को भी विश्राम न लेकर नियमानुसार उसकी आज्ञाओं का पालन करता रहता है। अर्थात् इस परमेश्वर के ही भय से सूर्य और अग्नि तपते तथा इन्द्र, वायु और पांचवा मृत्यु दौड़ते हैं। अतएव जो पुरुष इस शरीर के नाश होने से पूर्व ही ब्रह्म को जान लेता है वह सभी बन्धनों से मुक्त हो जाता है और यदि नहीं जान पाता तो उसे इन्हीं जन्म-मरणशील लोकों में फिर जन्म ग्रहण करना पड़ता है।

अन्त में उस संकल्प शून्य हृदय की स्थिति को किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है,उसके लिये योग-साधना का उपदेश देते हुए यमराज ने कहा—

यदा पञ्चाव तिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम॥
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रिय धारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ॥

'जिस समय अपने-अपने विषयों से निवृत्त हुई पांचों ज्ञानेन्द्रियां मन के सहित आत्मा में स्थित हो जाती हैं और निश्चयात्मिका बुद्धि भी अपने व्यापारों में चेष्टा नहीं करती, उस अवस्था को ही परम गति कहते हैं। उसी स्थिर इन्द्रिय-धारणा को योग कहते हैं। उस समय पुरुष प्रमाद रहित हो जाता है, क्योंकि योग ही उत्पत्ति और नाश रूप है। तात्पर्य यह कि सिद्धियों आदि को प्राप्त कर प्रमाद नहीं करना चाहिये। लय की निवृत्ति के लिये प्रमाद का अभाव करना चाहिए।

जिस समय योग-साधना द्वारा मनुष्य की सारी कामनायें नष्ट हो जाती हैं, जब मन सभी प्रकार की मलिनताओं का परित्याग कर निर्मल दर्पण की भांति पवित्र हो जाता है और जब चित्त की समस्त वासनायें पूरी तरह नष्ट हो जाती हैं तथा हृदय की ग्रंथियों का छेदन हो जाता है तब यह मरणशील मनुष्य अमर हो जाता है और इस शरीर से ब्रह्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाव को प्राप्त हो जाता है। अत: साधक के लिए आवश्यक है कि वह अपनी अन्तरात्मा को शरीर से पृथक् अनुभव करने का अभ्यास करते हुए उसे ही चिन्मात्र विशुद्ध और अमृतमय पुरुष समझे।

'यमराज द्वारा कही हुई इस विद्या और सम्पूर्ण योग-विधि को प्राप्त कर नचिकेता ब्रह्म भाव को पाकर धर्माधर्म-शून्य और अमर हो गया। दूसरा भी जो कोई अध्यात्म योग को इस प्रकार जानेगा वह भी वैसा ही हो जाएगा। बस यही शास्त्र का उपदेश है, इससे परे कुछ भी नहीं है।

इस प्रकार इस कठोपनिषद में यमराज और नचिकेता के कथोपकथन द्वारा ब्रह्म विद्या का अत्यन्त सरल एवं रोचक वर्णन हुआ है। इसकी वर्णन-शैली बड़ी ही सुबोध और प्रभावोत्पादक है। अन्य उपनिषदों की तरह इसमें जहां तत्व-ज्ञान का गंभीर विवेचन है वहां नचिकेता का चरित्र पाठकों के सामने एक अनुपम आदर्श उपस्थित करता है। योग की साधना-विधि का जैसा वर्णन सबसे पहले इस उपनिषद में हुआ है, वैसा अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। इस उपनिषद के अनेक मंत्रों का कहीं शब्दत: और कहीं अर्थत: उल्लेख श्री मद्भगवद्गीता में हुआ है। इसमें वर्णित शरीर रूपी रथ की परिकल्पना परवर्ती अनेक धर्म-ग्रन्थों में ज्यों की त्यों ग्रहण कर ली गई है। श्रीमद्भगवद्गीता आदि धर्म-शास्त्रों में इस संसार का अश्वत्थ-वृक्ष के रूप में जो उल्लेख हुआ है, वह भी यहीं से लिया गया है। इससे स्पष्ट है कि प्रस्तुत उपनिषद में मानव-आत्म-कल्याण हेतु जिन साधन-प्रणालियों का विवेचन हुआ है, यदि मनुष्य उन सबको विवेक, ज्ञान-सम्पन्न हो ग्रहण कर तदनुकूल आचरण करे तो उससे उसका आत्म-विकास अवश्य संभव हो सकता है। एक बारस्वामी विवेकानन्द नेअपने एक शिष्य से इस उपनिषद की प्रशंसा करते हुए कहा था कि 'उपनिषदों में ऐसा सुन्दर ग्रन्थ और कोई नहीं।' मैं चाहता हूं, तू इसे कण्ठस्थ कर ले। नचिकेता के समान श्रद्धा, साहस, विचार और वैराग्य अपने जीवन में लाने की चेष्टा कर, केवल पढ़ने से क्या होगा?' 'विवेकानन्द साहित्य - षष्ठ खण्ड'

ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति:

—सह शिक्षक, श्री जैन विद्यालय, कलकत्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org